नईदुनिया

संपादकीय

अनशन टूटा, आंदोलन बिखरा दिल्ली की लड़ाई क्यों हुई कमजोर

देश की राजधानी दिल्ली के जंतर-मंतर पर पिछले 25 दिनों से गूंज रही आवाज अब धीमी पड़ गई है। कारण न कोई सरकारी लाठी है, न आपातकाल, बल्कि आंदोलन के भीतर की फूट, नेतृत्व की नासमझी और सोनम वांगचुक के अचानक अनशन तोड़ देने का फैसला है। जिस आंदोलन को युवा पीढ़ी की आखिरी उम्मीद बताया जा रहा था, वह आज एक थके-हारे समझौते और आपसी आरोप-प्रत्यारोप के बीच दम तोड़ता नजर आ रहा है।

सच कड़वा है, लेकिन यही सच है। केंद्र सरकार ने न बंदूक चलाई, न जेलें भरीं। उसने केवल समय का इंतजार किया और आंदोलन को उसकी अपनी कमजोरियों के साथ आगे बढ़ने दिया। सोनम वांगचुक का अनशन जब टूटा तो लगा कि शायद कोई रास्ता निकला होगा, लेकिन 24 घंटे के भीतर मंच पर जो कुछ हुआ, उसने यह संकेत दिया कि आंदोलन के भीतर गंभीर मतभेद मौजूद हैं। एक ओर सरकार से बातचीत की बात हो रही थी, तो दूसरी ओर मंच से एक-दूसरे पर आरोप लगाए जा रहे थे। ऐसे हालात किसी भी आंदोलन को कमजोर कर देते हैं।

लद्दाख की मांग वाजिब थी। पर्यावरण की चिंता भी उचित थी और संविधान की छठी अनुसूची को लेकर उठे सवाल भी महत्वपूर्ण थे। इसी कारण देश ने सोनम वांगचुक के 25 दिन के अनशन को गंभीरता से लिया। मीडिया ने उसे प्रमुखता दी और जनता ने भी ध्यान से सुना। लेकिन किसी भी आंदोलन की सफलता केवल मांगों की मजबूती से नहीं, बल्कि नेतृत्व की स्पष्ट रणनीति, अनुशासन और एकजुटता से तय होती है। यदि आंदोलन के भीतर समन्वय ही न रहे तो उसका असर स्वत: कम हो जाता है। सबसे बड़ी चिंता यह है कि नेतृत्व पूरी तरह दिशाहीन दिखाई दिया। मंच से जुड़े विभिन्न पक्ष अलग-अलग दावे करते रहे। कोई इसे जीत बता रहा था, कोई धोखा। ऐसे में आम कार्यकर्ता का स्वाभाविक सवाल था कि आगे की रणनीति क्या है। जब नेतृत्व के पास स्पष्ट दिशा नहीं होती तो आंदोलन भटक जाता है और ऐसी स्थिति में सरकार पर दबाव भी स्वत: कम हो जाता है।

इसका सबसे बड़ा नुकसान उस आम नागरिक का हुआ, जिसने उम्मीद की थी कि उसकी आवाज दिल्ली तक पहुंचेगी। उन युवाओं का भी भरोसा कमजोर हुआ, जो रोजगार, पर्यावरण और नीति से जुड़े मुद्दों को लेकर इस आंदोलन से जुड़े थे। लोकतंत्र में विरोध की अपनी महत्वपूर्ण भूमिका है, लेकिन यदि आंदोलन का चेहरा ही बिखर जाए तो भविष्य में अन्य आंदोलनों की विश्वसनीयता पर भी प्रश्न उठते हैं।

पच्चीस दिन का अनशन कोई साधारण बात नहीं है। इसके लिए त्याग और धैर्य चाहिए। लेकिन यदि उसके बाद आंदोलन अपनी दिशा खो दे तो यह बताता है कि तैयारी अधूरी थी और संगठनात्मक मजबूती पर्याप्त नहीं थी। किसी भी जन आंदोलन के लिए अनुशासन, एकजुटता और साझा एजेंडा सबसे आवश्यक होते हैं। इनके अभाव में बड़ी से बड़ी पहल भी कमजोर पड़ जाती है। अब यदि इस आंदोलन को फिर से खड़ा होना है तो सबसे पहले अपनी कमियों को स्वीकार करना होगा। नेतृत्व को आत्ममंथन करना होगा, कार्यकर्ताओं का विश्वास दोबारा जीतना होगा और स्पष्ट रणनीति के साथ आगे बढ़ना होगा। लोकतंत्र में विरोध आवश्यक है, लेकिन विरोध का अर्थ अव्यवस्था नहीं होता। अनशन तपस्या है, सौदेबाजी नहीं; मंच एकता का प्रतीक है, टकराव का नहीं। लद्दाख की समस्याएं आज भी मौजूद हैं। यदि उन्हें समाधान तक पहुंचाना है तो आंदोलन को भावनाओं से नहीं, बल्कि अनुशासन, धैर्य और मजबूत नेतृत्व के साथ आगे बढ़ना होगा।

आजकल

नगर निगम को बड़े हादसों का इंतजार क्यों?

शहर के बीचों-बीच खड़े जर्जर भवन अब टाइम बम बन चुके हैं। अखबार में प्रकाशित रिपोर्ट के अनुसार शहर में कुल 3435 भवन जर्जर घोषित हैं। इनमें 757 भवन अति जर्जर, 740 सरकारी और 600 ऐसे हैं, जिन पर पहले ही नोटिस जारी हो चुके हैं। इसके बावजूद अब तक केवल 35 भवन ही गिराए जा सके हैं। सवाल सीधा है कि इतनी बड़ी संख्या में खतरनाक भवनों की पहचान के बाद भी नगर निगम कार्रवाई में इतना पीछे क्यों है? क्या प्रशासन किसी बड़े हादसे का इंतजार कर रहा है?

नगर निगम का काम केवल नोटिस जारी करना नहीं, बल्कि यह सुनिश्चित करना भी है कि खतरा पूरी तरह टल जाए। 2184 नोटिस जारी हो चुके हैं, लेकिन कार्रवाई केवल 35 भवनों तक सीमित है। इसका अर्थ है कि अधिकांश मामलों में फाइलें आगे नहीं बढ़ीं। यदि कोई भवन अति जर्जर घोषित है तो उसमें रहने वालों की जान हर दिन जोखिम में है। फिर भी कार्रवाई की रफ्तार बेहद धीमी है। अक्सर तर्क दिया जाता है कि भवन मालिक न्यायालय चले जाते हैं या पुनर्वास की मांग करते हैं। यह तर्क पूरा सच नहीं है। कानून स्पष्ट कहता है कि यदि कोई भवन जनजीवन के लिए खतरा है तो प्रशासन उसे तत्काल खाली कराकर ध्वस्त कर सकता है। पुनर्वास और मुआवजे की प्रक्रिया बाद में भी चल सकती है। यदि वर्षों पहले चिन्हित भवन आज तक नहीं गिराए गए तो यह कानूनी बाधा से अधिक प्रशासनिक इच्छाशक्ति की कमी है।समाधान कठिन नहीं है। अति जर्जर भवनों को तय समय-सीमा में खाली कराकर गिराया जाए, सरकारी भवनों को प्राथमिकता मिले और निजी भवनों के लिए पुनर्वास की स्पष्ट व्यवस्था बनाई जाए। साथ ही प्रत्येक भवन की स्थिति सार्वजनिक डैशबोर्ड पर नियमित अपडेट की जाए। जर्जर भवन केवल ईंट-पत्थर का ढांचा नहीं, बल्कि संभावित मौत का कारण हैं। रोकथाम हमेशा सस्ती होती है, जबकि हादसे के बाद का शोक और नुकसान कहीं अधिक महंगा पड़ता है। अब समय कार्रवाई का है, इंतजार का नहीं।

अमेरिकी टैरिफ की मार झेलने को तैयार भारतीय फार्मा उद्योग

वाशिंगटन से आई एक घोषणा ने पूरी दुनिया के साथ भारत के फार्मा उद्योग को भी हिला कर रख दिया है। अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप ने कहा है कि अमेरिका में बिकने वाली जेनेरिक दवाओं पर 200 प्रतिशत तक टैरिफ लगाया जा सकता है। यह टैरिफ 1 अगस्त 2026 से लागू होगा और 2029 तक इसे चरणबद्ध तरीके से बढ़ाया जाएगा। यानी 2026 में 100 प्रतिशत, 2028 में 150 प्रतिशत और 2029 में 200 प्रतिशत टैरिफ लगेगा। इसका सीधा असर भारत पर पड़ेगा, क्योंकि भारत दुनिया का सबसे बड़ा जेनेरिक दवा निर्यातक देश है और अमेरिका भारत की दवाओं का सबसे बड़ा बाजार है।

भारत हर साल अमेरिका को लगभग 84 हजार करोड़ रुपये की दवाएं निर्यात करता है, जो भारत के कुल फार्मा निर्यात का 38 प्रतिशत है। यानी अमेरिका में बेची जाने वाली हर तीन जेनेरिक दवाओं में से एक भारत में बनी होती है। भारतीय दवाएं सस्ती और गुणवत्तापूर्ण होने के कारण अमेरिकी नागरिकों और वहां की सरकारी स्वास्थ्य योजनाओं दोनों के लिए महत्वपूर्ण हैं। यदि इन दवाओं पर 200 प्रतिशत टैरिफ लग जाता है तो उनकी कीमत कई गुना बढ़ जाएगी और इसका सीधा बोझ अमेरिकी मरीजों पर पड़ेगा। ट्रंप प्रशासन का तर्क है कि अमेरिका दवाओं के लिए दूसरे देशों पर अत्यधिक निर्भर हो गया है और कोविड महामारी के दौरान इस निर्भरता के खतरे सामने आए थे। इसलिए वह घरेलू दवा निर्माण को बढ़ावा देना चाहता है। हालांकि विशेषज्ञों का मानना है कि इतने कम समय में अमेरिका अपनी जरूरत की दवाएं न तो पूरी तरह स्वयं बना सकता है और न ही भारत जैसी कम लागत पर तैयार कर सकता है। ऐसे में इस टैरिफ का सबसे बड़ा असर अंतत: अमेरिकी उपभोक्ताओं पर ही पड़ेगा।

भारत के लिए यह चुनौती जितनी बड़ी है, उतना ही बड़ा अवसर भी है। यदि भारतीय दवाएं महंगी हो गईं तो अमेरिका दूसरे देशों से आयात बढ़ाने का प्रयास करेगा। वियतनाम, बांग्लादेश और कुछ यूरोपीय देश इस अवसर की तलाश में हैं। दूसरी ओर भारत की अनेक छोटी और मझोली फार्मा कंपनियां, जिनका बड़ा कारोबार अमेरिकी बाजार पर निर्भर है, आर्थिक दबाव में आ सकती हैं। इनके पास इतना लाभांश नहीं है कि वे अतिरिक्त टैरिफ का बोझ आसानी से सहन कर सकें। फिर भी भारत की सबसे बड़ी ताकत उसकी विशाल जेनेरिक दवा निर्माण क्षमता है। देश में तीन हजार से अधिक फार्मा कंपनियां और साढ़े दस हजार से अधिक विनिर्माण इकाइयां हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन और अमेरिकी एफडीए से मान्यता प्राप्त सैकड़ों उत्पादन संयंत्र भारत में संचालित हैं। यही क्षमता इस संकट को अवसर में बदल सकती है, बशर्ते सरकार और उद्योग मिलकर दूरदर्शी रणनीति अपनाएं।

भारत को सबसे पहले अमेरिका के साथ बातचीत के जरिए इस टैरिफ को कम कराने या टालने का प्रयास करना चाहिए। दोनों देशों के बीच प्रस्तावित व्यापार समझौते में फार्मा क्षेत्र को अलग श्रेणी में रखा जा सकता है। भारत यह तथ्य भी सामने रख सकता है कि भारतीय दवाओं के कारण अमेरिका को हर वर्ष अरबों डॉलर की बचत होती है और यदि टैरिफ लागू हुआ तो अमेरिकी स्वास्थ्य व्यवस्था पर अतिरिक्त आर्थिक बोझ पड़ेगा। साथ ही अब केवल अमेरिकी बाजार पर निर्भर रहने की नीति भी बदलनी होगी। अफ्रीका, लैटिन अमेरिका, दक्षिण-पूर्व एशिया और यूरोप में भारतीय दवाओं की मांग तेजी से बढ़ रही है। सरकार को इन बाजारों में निर्यात बढ़ाने के लिए विशेष नीति, निर्यात प्रोत्साहन योजनाओं का विस्तार और भारतीय दवा ब्रांडों को वैश्विक पहचान दिलाने पर जोर देना चाहिए। भारत को केवल जेनेरिक दवाओं तक सीमित रहने के बजाय अनुसंधान और विकास में निवेश बढ़ाना होगा, ताकि नई दवाओं और बायोलॉजिक उत्पादों के क्षेत्र में भी मजबूत उपस्थिति बनाई जा सके। साथ ही एक्टिव फार्मास्युटिकल इंग्रीडिएंट (एपीआई) के घरेलू उत्पादन को बढ़ावा देना जरूरी है, क्योंकि आज भी 60 प्रतिशत से अधिक एपीआई चीन से आयात किया जाता है। राज्य सरकारों को गुजरात, हैदराबाद और हिमाचल प्रदेश जैसे फार्मा क्लस्टरों में आधारभूत सुविधाएं, परीक्षण प्रयोगशालाएं, कॉमन फैसिलिटी सेंटर और लॉजिस्टिक हब विकसित करने चाहिए, ताकि छोटी कंपनियों को भी वैश्विक प्रतिस्पर्धा में मजबूती मिल सके।

दुनिया अब व्यापार को भी भू-राजनीतिक हथियार की तरह इस्तेमाल कर रही है। ऐसे में भारत को न घबराने की जरूरत है और न ही लापरवाही की। भारतीय फार्मा उद्योग ने 2008 की वैश्विक मंदी, कोविड महामारी और सप्लाई चेन संकट जैसी चुनौतियों का सफलतापूर्वक सामना किया है। सरकार को उद्योग के साथ लगातार संवाद बनाए रखते हुए कर राहत, निर्यात प्रोत्साहन और अनुसंधान सहायता जैसे कदम समय पर उठाने होंगे। 200 प्रतिशत टैरिफ की घोषणा निश्चित रूप से एक बड़ा झटका है, लेकिन यह अंत नहीं है। भारत के पास दुनिया की सबसे बड़ी जेनेरिक दवा निर्माण क्षमता, कुशल वैज्ञानिक और विशाल घरेलू बाजार है। यदि इन तीनों शक्तियों का सही उपयोग किया गया तो भारत न केवल इस संकट से उबर जाएगा, बल्कि वैश्विक फार्मा मानचित्र पर अपनी स्थिति और अधिक मजबूत करेगा। स्वास्थ्य व्यापार की वस्तु नहीं है और दवाओं पर अत्यधिक टैरिफ का सबसे बड़ा नुकसान अंतत: मरीजों को ही उठाना पड़ता है। इसलिए उम्मीद है कि दोनों देशों के बीच संवाद से व्यावहारिक समाधान निकलेगा, लेकिन तब तक भारत को आत्मनिर्भरता की दिशा में अपने प्रयास और तेज करने होंगे।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

आंगनबाड़ी गोद लेने की योजना, मंशा अच्छी लेकिन चुनौतियां बड़ी

मध्यप्रदेश सरकार ने उच्च शिक्षा विभाग के माध्यम से एक नई पहल शुरू की है, जिसके तहत प्रदेश के सभी विश्वविद्यालय और महाविद्यालय आंगनबाड़ी केंद्रों को गोद लेंगे। इस योजना के अंतर्गत कॉलेजों के विद्यार्थियों को इंटर्नशिप और फील्डवर्क के माध्यम से आंगनबाड़ी केंद्रों से जोड़ा जाएगा। उनके फीडबैक के आधार पर सरकार जिलों में संचालित आंगनबाड़ी केंद्रों के कायाकल्प और सुधार की कार्ययोजना तैयार करेगी। महिला एवं बाल विकास विभाग के आयुक्त द्वारा भेजे गए पत्र के बाद उच्च शिक्षा विभाग ने सभी विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों के प्राचार्यों को इस संबंध में निर्देश जारी कर दिए हैं। प्रदेश में कुल 97,882 आंगनबाड़ी केंद्र संचालित हैं, जिनमें से केवल चार बड़े शहरों- भोपाल, इंदौर, ग्वालियर और जबलपुर- में ही 7,697 केंद्र हैं।

निश्चित रूप से यह पहल स्वागत योग्य है, क्योंकि इससे दोहरा लाभ होने की संभावना है। पहला, आंगनबाड़ी केंद्रों में बच्चों को बेहतर शैक्षणिक वातावरण मिलेगा और दूसरा, उच्च शिक्षा के विद्यार्थियों को जमीनी स्तर का व्यावहारिक अनुभव प्राप्त होगा। युवा अपनी रचनात्मक सोच और आधुनिक दृष्टिकोण के साथ आंगनबाड़ी की व्यवस्थाओं में सुधार के सुझाव दे सकेंगे और समाज के प्रति अपनी जिम्मेदारी को भी समझ सकेंगे। शासन का उद्देश्य आंगनबाड़ी केंद्रों में सामुदायिक भागीदारी बढ़ाना और बच्चों के सर्वांगीण विकास को सुनिश्चित करना है।

लेकिन इस पहल के साथ एक बड़ा सवाल भी खड़ा होता है। जब महिला एवं बाल विकास विभाग करोड़ों रुपये का बजट खर्च करने के बाद भी आंगनबाड़ी केंद्रों में समुचित व्यवस्था नहीं कर पा रहा है, तो क्या विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों के सहयोग से ही यह समस्या हल हो जाएगी? क्या विभाग अपनी जिम्मेदारी से मुंह मोड़कर अब यह भार शिक्षा संस्थानों पर डाल रहा है? आंगनबाड़ी केंद्रों में आज भी मूलभूत सुविधाओं की भारी कमी है। अधिकांश केंद्रों में न पर्याप्त भवन हैं, न पेयजल, न शौचालय, न खेल सामग्री और न ही पोषण आहार की समय पर उपलब्धता सुनिश्चित हो पाती है। आंगनबाड़ी कार्यकर्ताओं और सहायिकाओं पर पहले से ही काम का बोझ अधिक है और उन्हें समय पर मानदेय भी नहीं मिलता। ऐसे में केवल छात्रों के फील्ड विजिट से व्यवस्था कितनी सुधर पाएगी, यह बड़ा प्रश्न है।

प्रदेश के अधिकांश सरकारी विश्वविद्यालय और महाविद्यालय स्वयं संसाधनों की भारी कमी से जूझ रहे हैं। कई सरकारी कॉलेजों में स्थायी प्राचार्य नहीं हैं। विषय विशेषज्ञ शिक्षकों के पद वर्षों से रिक्त हैं। प्रयोगशालाओं में उपकरणों का अभाव है, पुस्तकालयों में नई पुस्तकें नहीं पहुंच रही हैं और कई भवन जर्जर अवस्था में हैं। अनेक कॉलेजों में एक ही शिक्षक को कई विषय पढ़ाने पड़ रहे हैं। छात्र संख्या के अनुपात में कक्षाओं और फर्नीचर की कमी है। तकनीकी शिक्षा और कौशल विकास के लिए आवश्यक अधोसंरचना भी पर्याप्त नहीं है। ऐसे में, जब अपने ही संस्थानों में शिक्षा की गुणवत्ता बनाए रखना चुनौती बन गया है, तब अतिरिक्त जिम्मेदारी देकर आंगनबाड़ी सुधारने की अपेक्षा कितनी व्यवहारिक है?

उच्च शिक्षा विभाग को यह समझना होगा कि किसी भी संस्थान की पहली जिम्मेदारी अपने विद्यार्थियों के भविष्य को बेहतर बनाना है। यदि किसी कॉलेज में शिक्षकों की कमी है, प्रयोगशालाएं अधूरी हैं और छात्र बुनियादी सुविधाओं के लिए संघर्ष कर रहे हैं, तो उससे यह अपेक्षा करना कि वह आंगनबाड़ी केंद्र की पूरी व्यवस्था संभाल लेगा, व्यावहारिक नहीं कहा जा सकता। इससे न तो कॉलेज अपनी शैक्षणिक गुणवत्ता पर पूरा ध्यान दे पाएंगे और न ही आंगनबाड़ी केंद्रों में अपेक्षित सुधार हो सकेगा। दोनों ही व्यवस्थाएं प्रभावित होने का खतरा रहेगा।

यह भी नहीं कहा जा सकता कि उच्च शिक्षा के विद्यार्थियों को सामाजिक कार्यों से दूर रखा जाए। फील्डवर्क, इंटर्नशिप और सामुदायिक जुड़ाव शिक्षा का महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। लेकिन यह जुड़ाव सहयोग के रूप में होना चाहिए, अतिरिक्त बोझ के रूप में नहीं। विश्वविद्यालय और महाविद्यालय स्वेच्छा से अपने आसपास के आंगनबाड़ी केंद्रों में शैक्षणिक गतिविधियां चला सकते हैं। बच्चों को कहानी सुनाना, चित्रकला सिखाना तथा स्वास्थ्य और स्वच्छता के प्रति जागरूक करना जैसे कार्य किए जा सकते हैं। लेकिन भवन मरम्मत, पोषण व्यवस्था और स्टाफ प्रबंधन जैसी जिम्मेदारियां कॉलेजों पर डालना उचित नहीं होगा।

महिला एवं बाल विकास विभाग को अपनी जिम्मेदारी से पीछे नहीं हटना चाहिए। विभाग को आंगनबाड़ी केंद्रों के लिए पर्याप्त बजट उपलब्ध कराना चाहिए, भवनों का निर्माण कराना चाहिए तथा पेयजल, शौचालय और बिजली जैसी मूलभूत सुविधाएं सुनिश्चित करनी चाहिए। आंगनबाड़ी कार्यकर्ताओं के रिक्त पद भरे जाएं, उन्हें समय पर प्रशिक्षण और मानदेय मिले तथा पोषण आहार की गुणवत्ता और आपूर्ति पर कड़ी निगरानी रखी जाए। जब तक विभाग स्वयं अपनी व्यवस्था मजबूत नहीं करेगा, तब तक बाहरी सहयोग से केवल अस्थायी सुधार ही संभव होगा।

उच्च शिक्षा संस्थानों पर अतिरिक्त भार डालने के बजाय पहले उन्हें सशक्त बनाया जाना चाहिए। सरकारी कॉलेजों में शिक्षकों की भर्ती, प्रयोगशालाओं और पुस्तकालयों के लिए विशेष अनुदान तथा आधुनिक तकनीकी संसाधनों की उपलब्धता सुनिश्चित की जाए। जब संस्थान स्वयं मजबूत होंगे, तभी वे समाज के लिए प्रभावी योगदान दे सकेंगे।

आंगनबाड़ी गोद लेने की योजना की मंशा अच्छी है और इससे छात्र तथा समाज दोनों को लाभ हो सकता है, लेकिन इसे लागू करने से पहले जमीनी हकीकत को समझना आवश्यक है। बेहतर होगा कि सरकार दोनों विभागों को उनकी मूल जिम्मेदारियों के साथ सशक्त बनाए और फिर सहयोग के आधार पर बच्चों के बेहतर भविष्य के लिए आगे बढ़े। तभी यह पहल वास्तव में सार्थक सिद्ध होगी।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

बायोमेट्रिक की निगरानी में आयुष कॉलेज, अब फर्जी फैकल्टी की खैर नहीं

देश में आयुष शिक्षा की गुणवत्ता सुधारने की दिशा में केंद्र सरकार ने एक महत्वपूर्ण कदम उठाया है। अब आयुर्वेद, योग, यूनानी, सिद्ध और होम्योपैथी कॉलेजों में घोस्ट फैकल्टी और फर्जी दस्तावेजों के सहारे संस्थान चलाने की गुंजाइश लगभग समाप्त हो जाएगी। राष्ट्रीय आयुष आयोग ने सभी आयुष कॉलेजों के लिए नए और सख्त दिशा-निर्देश जारी किए हैं। इनका पालन नहीं करने वाले कॉलेजों की मान्यता रद्द की जा सकती है और उनकी सीटों में 20 प्रतिशत तक की कटौती भी संभव है। यह फैसला आयुष शिक्षा की विश्वसनीयता बनाए रखने और छात्रों के भविष्य को सुरक्षित करने के उद्देश्य से लिया गया है। पिछले कई वर्षों से ऐसे कॉलेजों की शिकायतें लगातार सामने आ रही थीं, जहां कागजों पर फैकल्टी पूरी दिखाई जाती थी, लेकिन वास्तविकता इससे बिल्कुल अलग होती थी।

नए नियमों के अनुसार अब किसी भी आयुष कॉलेज को मान्यता तभी मिलेगी, जब वह सभी निर्धारित मानकों का पालन करेगा। सबसे बड़ा बदलाव बायोमेट्रिक उपस्थिति को लेकर किया गया है। अब प्रत्येक कॉलेज में शिक्षकों और कर्मचारियों की उपस्थिति बायोमेट्रिक प्रणाली से दर्ज होगी। यदि किसी संस्थान में यह व्यवस्था नहीं पाई गई या उसमें गड़बड़ी मिली, तो उसे मान्यता नहीं मिलेगी। इसका सीधा अर्थ है कि अब केवल कागजों पर शिक्षक दिखाकर कॉलेज नहीं चलाए जा सकेंगे। आयोग का कहना है कि पिछले कुछ वर्षों में कई ऐसे मामले सामने आए, जहां दस्तावेजों में 20 से 25 शिक्षक दर्ज थे, जबकि वास्तव में केवल चार या पांच शिक्षक ही मौजूद रहते थे। बाकी सभी केवल कागजी फैकल्टी थे।

नए प्रावधान फैकल्टी और संस्थागत व्यवस्थाओं की कमियों को भी सीधे प्रभावित करेंगे। यदि किसी कॉलेज में निर्धारित संख्या से कम शिक्षक पाए गए तो पांच प्रतिशत सीटों में कटौती की जाएगी। कमी अधिक होने पर यह कटौती 20 प्रतिशत तक पहुंच सकती है। इतना ही नहीं, यदि किसी विभाग में एक भी शिक्षक कम पाया गया तो उस विभाग में नए प्रवेश पर रोक लगाई जा सकती है। पहले कई कॉलेज आवश्यक शिक्षकों के बिना भी प्रवेश ले लेते थे और बाद में व्यवस्था करने का दावा करते थे, लेकिन अब आयोग हर वर्ष भौतिक और डिजिटल दोनों माध्यमों से निरीक्षण करेगा।

नियम केवल शिक्षकों तक सीमित नहीं हैं। कॉलेजों में प्रयोगशाला, पुस्तकालय, शिक्षण अस्पताल और छात्रावास जैसी मूलभूत सुविधाएं भी निर्धारित मानकों के अनुरूप होना अनिवार्य होगा। यदि निरीक्षण में ये सुविधाएं अधूरी पाई गईं तो संबंधित कॉलेज पर जुर्माना लगाया जा सकता है और बार-बार उल्लंघन होने पर मान्यता भी समाप्त की जा सकती है। आयोग ने यह भी स्पष्ट किया है कि अब फीस संरचना पूरी तरह पारदर्शी होगी। कॉलेज मनमाने ढंग से शुल्क नहीं वसूल सकेंगे और उन्हें अपनी फीस वेबसाइट पर सार्वजनिक करनी होगी, ताकि छात्रों और अभिभावकों को किसी प्रकार की भ्रम या धोखाधड़ी का सामना न करना पड़े।

सबसे सख्त प्रावधान शिक्षकों की योग्यता और अनुभव को लेकर किए गए हैं। अब केवल वही शिक्षक नियुक्त किए जा सकेंगे, जिनके पास आयोग द्वारा निर्धारित योग्यता और अनुभव होगा। फर्जी डिग्री या अनुभव प्रमाण-पत्र के आधार पर नियुक्ति करने वाले संस्थानों के खिलाफ आपराधिक कार्रवाई तक की जा सकती है। आयोग का स्पष्ट मत है कि आयुष चिकित्सा से जुड़े छात्रों की गुणवत्ता पर कोई समझौता नहीं किया जा सकता, क्योंकि अयोग्य चिकित्सक का सीधा असर मरीजों के स्वास्थ्य पर पड़ता है।

इन निर्देशों के बाद देशभर के आयुष कॉलेजों में हलचल बढ़ गई है। मध्यप्रदेश, राजस्थान, उत्तरप्रदेश और महाराष्ट्र जैसे राज्यों में बड़ी संख्या में आयुष कॉलेज संचालित हैं और कई संस्थानों की जांच पहले से जारी है। भोपाल सहित प्रदेश के कई कॉलेजों की शिकायतें भी आयोग तक पहुंची थीं। कॉलेज संचालकों का कहना है कि अचानक लागू हुई इतनी सख्ती से उन्हें कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा, क्योंकि योग्य शिक्षकों की उपलब्धता और बेहतर अधोसंरचना विकसित करने में समय और संसाधनों की आवश्यकता होती है। दूसरी ओर छात्र और अभिभावक इस निर्णय का स्वागत कर रहे हैं। उनका मानना है कि वर्षों से वे भारी फीस देकर ऐसे संस्थानों में पढ़ रहे थे, जहां गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का अभाव था।

विशेषज्ञों का मानना है कि यह फैसला भले देर से आया हो, लेकिन सही दिशा में उठाया गया कदम है। आयुष भारत की प्राचीन चिकित्सा परंपरा है और कोविड के बाद इसकी स्वीकार्यता दुनिया भर में बढ़ी है। ऐसे समय में यदि आयुष शिक्षा की गुणवत्ता कमजोर रही तो पूरी व्यवस्था की विश्वसनीयता प्रभावित होगी। इसलिए आवश्यक है कि शिक्षा के क्षेत्र में केवल वही संस्थान बने रहें, जो निर्धारित मानकों का पालन करें।

आयोग ने सभी कॉलेजों को नए सत्र से पहले अपनी जानकारी पोर्टल पर अद्यतन करने और स्व-मूल्यांकन रिपोर्ट प्रस्तुत करने के निर्देश दिए हैं। निरीक्षण में अनियमितता मिलने पर पहले सुधार का अवसर दिया जाएगा, लेकिन लगातार लापरवाही बरतने पर मान्यता रद्द करने, सीटें घटाने और जुर्माना लगाने जैसी कार्रवाई की जाएगी। छात्रों से भी अपील की गई है कि प्रवेश लेने से पहले संबंधित कॉलेज की मान्यता और सुविधाओं की पूरी जानकारी अवश्य जांच लें।

आयुष शिक्षा के लिए यह एक नई शुरुआत है। अब शिक्षा के नाम पर केवल कागजी संस्थान चलाना आसान नहीं होगा। सरकार का संदेश स्पष्ट है कि गुणवत्ता से कोई समझौता नहीं किया जाएगा। यदि कॉलेज निर्धारित नियमों का पालन करेंगे तो देश को बेहतर आयुष चिकित्सक मिलेंगे, अन्यथा ऐसे संस्थानों के लिए व्यवस्था में कोई स्थान नहीं बचेगा।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)